अध्याय-१६-१७

शीघ्र ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति, ब्रह्मज्ञान की योग्यताएँ, बाबा का उपदेश, बाबा का वैशिष्ट्य। (इन दो अध्यायों में एक धनाढ्य ने किस प्रकार साईबाबा से शीघ्र ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहा था उसका वर्णन है।)

पूर्व विषय

गत अध्याय में श्री चोलकर का अल्प संकल्प किस प्रकार पूर्णत: फलीभूत हुआ, इसका वर्णन किया गया है। उस कथा में श्री साईबाबा ने दर्शाया था कि प्रेम तथा भक्तिपूर्वक अर्पित की हुई तुच्छ वस्तु भी वे सहर्ष स्वीकार कर लेते थे, परन्तु यदि वह अहंकारसहित भेंट की गई तो वह अस्वीकृत कर दी जाती थी। पूर्ण सच्चिदानन्द होने के कारण वे बाह्य आचार-विचारों को विशेष महत्त्व न देते थे और विनम्रता और आदरसहित भेंट की गई वस्तु का स्वागत करते थे।

यथार्थ में देखा जाए तो सद्गुरु साईबाबा से अधिक दयालु और हितैषी दूसरा इस संसार में कौन हो सकता है? उनकी तुलना समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली चिन्तामणि या कामधेनु से भी नहीं हो सकती। जिस अमूल्य निधि की उपलब्धि हमें सद्गुरु से होती है, वह कल्पना से भी परे है।

ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति की इच्छा से आए हुए एक धनाढ्य व्यक्ति को श्री साईबाबा ने किस प्रकार उपदेश दिया, उसे अब श्रवण करें।

एक धनी व्यक्ति (दुर्भाग्य से मूल ग्रंथ में उसका नाम और परिचय नहीं दिया गया है) अपने जीवन में सब प्रकार से संपन्न था। उसके पास अतुल सम्पत्ति, घोड़े, भूमि और अनेक दास और दासियाँ थीं। जब बाबा की कीर्त्ति उसके कानों तक पहुँची तो उसने अपने एक मित्र से कहा कि, ''मेरे लिए अब किसी वस्तु की अभिलाषा शेष नहीं रह गई है, इसलिये अब शिरडी जाकर बाबा से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए और यदि किसी प्रकार उसकी प्राप्ति हो गई तो फिर मुझसे

अधिक सुखी और कौन हो सकता है?'' उनके मित्र ने उन्हें समझाया कि, ''ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति सहज नहीं है, विशेषकर तुम जैसे मोहग्रस्त को, जो सदैव स्त्री, सन्तान और द्रव्योपार्जन में ही फँसा रहता है। तुम्हारी ब्रह्मज्ञान की आकांक्षा की पूर्त्ति कौन करेगा, जो भूलकर भी कभी एक फूटी कौड़ी का भी दान नहीं देता?''

अपने मित्र के परामर्श की उपेक्षा कर वे आने-जाने के लिये एक ताँगा लेकर शिरडी आए और सीधे मस्जिद पहुँचे। साईबाबा के दर्शन कर उनके चरणों पर गिरे और प्रार्थना की कि, ''आप यहाँ आनेवाले समस्त लोगों को अल्प समय में ही ब्रह्म-दर्शन करा देते हैं, केवल यही सुनकर मैं बहुत दूर से इतना मार्ग चलकर आया हूँ। मैं इस यात्रा से अधिक थक गया हूँ। यदि कहीं मुझे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो जाए तो मैं यह कष्ट उठाना अधिक सफल और सार्थक समझूँगा।''

बाबा बोले, ''मेरे प्रिय मित्र! इतने अधीर न होओ। मैं तुम्हें शीघ्र ही ब्रह्म का दर्शन करा दूँगा। मेरे सब व्यवहार तो नगद ही हैं और मैं उधार कभी नहीं करता। इसी कारण अनेक लोग धन, स्वास्थ्य, शक्ति, मान, पद, आरोग्य तथा अन्य पदार्थों की इच्छापूर्त्ति के हेतु मेरे समीप आते हैं। ऐसा तो कोई बिरला ही आता है, जो ब्रह्मज्ञान का पिपासु हो। भौतिक पदार्थों की अभिलाषा से यहाँ आने वाले लोगों का कोई अभाव नहीं, परन्तु आध्यात्मिक जिज्ञासुओं का आगमन बहुत ही दुर्लभ है। मैं सोचता हूँ कि यह क्षण मेरे लिये बहुत ही धन्य तथा शुभ है, जब आप सरीखे महानुभाव यहाँ पधारकर मुझे ब्रह्मज्ञान देने के लिये जोर दे रहे हैं। मैं सहर्ष आपको ब्रह्म-दर्शन करा दूँगा।''

यह कहकर बाबा ने उन्हें ब्रह्म-दर्शन कराने के हेतु अपने पास बिठा लिया और इधर-उधर की चर्चाओं में लगा दिया, जिससे कुछ समय के लिये वे अपना प्रश्न भूल गए। उन्होंने एक बालक को बुलाकर नंदू मारवाड़ी के यहाँ से पाँच रुपये उधार लाने को भेजा। लड़के ने वापस आकर बतलाया कि नंदू का तो कोई पता नहीं है और उसके घर पर ताला पड़ा है। फिर बाबा ने उसे दूसरे व्यापारी के यहाँ भेजा। इस बार भी लड़का रुपये लाने में असफल ही रहा। इस प्रयोग को दो-तीन बार दुहराने पर भी उसका परिणाम पूर्ववत् ही निकला।

हमें ज्ञात ही है कि बाबा स्वयं सगुण ब्रह्म के अवतार थे। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि इस पाँच रुपये सरीखी तुच्छ राशि की यथार्थ में उन्हें आवश्यकता ही क्या थी? उन्हें तो इसकी बिल्कुल आवश्यकता ही न थी। वे तो पूर्ण रीति से जानते होंगे कि नंदू घर पर नहीं हैं। यह नाटक तो उन्होंने केवल अन्वेषक के परीक्षार्थ ही रचा था। ब्रह्मजिज्ञासु महाशय जी के पास नोटों की गड्डियाँ थीं और यदि वे सचमुच ही ब्रह्मज्ञान के आकांक्षी होते तो इतने समय तक शान्त न बैठते। जब बाबा व्यग्रतापूर्वक पाँच रुपये उधार लाने के लिये बालक को यहाँ-वहाँ दौड़ा रहे थे तो वे मूक-दर्शक बने ही न बैठे रहते। वे जानते थे कि बाबा अपने वचन पूर्ण कर ऋण अवश्य चुकायेंगे। यद्यपि बाबा द्वारा इच्छित राशि बहुत ही अल्प थी, फिर भी वह स्वयं संकल्प करने में असमर्थ ही रहा और पाँच रुपया उधार देने तक का साहस न कर सका। पाठक थोड़ा विचार करें कि ऐसा व्यक्ति बाबा से ब्रह्मज्ञान, जो विश्व की अति श्रेष्ठ वस्तु है, उसकी प्राप्ति के लिये आया है। यदि बाबा से सचमुच प्रेम करने वाला अन्य कोई व्यक्ति होता तो वह केवल मूक-दर्शक न बनकर तुरन्त ही पाँच रुपये दे देता। परन्तु इन महाशय की दशा तो बिल्कुल ही विपरीत थी। उन्होंने न रुपये दिये और न शान्त ही बैठे, वरन् वापस जल्द लौटने की तैयारी करने लगे और अधीर होकर बाबा से बोले कि, ''अरे बाबा! कृपया मुझे शीघ्र ब्रह्मज्ञान दो।'' बाबा ने उत्तर दिया कि, ''मेरे प्यारे मित्र! क्या इस नाटक से तुम्हारी समझ में कुछ नहीं आया? मैं तुम्हें ब्रह्मदर्शन कराने का ही तो प्रयत्न कर रहा था! संक्षेप में तात्पर्य यह है कि ब्रह्म का दर्शन करने के लिये पाँच वस्तुओं का त्याग करना पड़ता है - (१) **पाँच प्राण** (२) **पाँच इन्द्रियाँ** (३) **मन** (४) **बुद्धि तथा** (५) **अहंकार। यह हुआ ब्रह्मज्ञान। आत्मानुभूति का मार्ग भी उसी प्रकार है, जिस प्रकार तलवार की धार पर चलना।**''

श्री साईबाबा ने फिर इस विषय पर विस्तृत वक्तव्य दिया, जिसका सारांश यह है -

ब्रह्मज्ञान या आत्मानुभूति की योग्यताएँ

सामान्य मनुष्यों को प्राय: अपने जीवन-काल में ब्रह्म के दर्शन नहीं

होते। उसकी प्राप्ति के लिए कुछ योग्यताओं का भी होना नितान्त आवश्यक है।

(१) **मुमुक्षुत्व (मुक्ति की तीव्र उत्कण्ठा)**

जो सोचता है कि मैं बन्धन में हूँ और इस बन्धन से मुक्त होना चाहे तो इस ध्येय की प्राप्ति के लिये उत्सुकता और दृढ़ संकल्प से प्रयत्न करता रहे तथा प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने को तैयार रहे, वही इस आध्यात्मिक मार्ग पर चलने योग्य है।

(२) **विरक्ति**

लोक-परलोक के समस्त पदार्थों से उदासीनता का भाव। ऐहिक वस्तुएँ, लाभ और प्रतिष्ठा, जो कि कर्मजन्य हैं - जब तक इनसे उदासीनता उत्पन्न न होगी, तब तक उसे आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश करने का अधिकार नहीं।

(३) **अन्तर्मुखता**

ईश्वर ने हमारी इन्द्रियों की रचना ऐसी की है कि उनकी स्वाभाविक वृत्ति सदैव बाहर की ओर आकृष्ट करती है। हमें सदैव बाहर का ही ध्यान रहता है, न कि अन्तर का। जो आत्मदर्शन और दैविक जीवन के इच्छुक हैं, उन्हें अपनी दृष्टि अंतर्मुखी बनाकर अपने आप में ही लीन होना चाहिए।

(४) **पाप शुद्धि**

जब तक मनुष्य दुष्टता त्याग कर दुष्कर्म करना नहीं छोड़ता, तब तक न तो उसे पूर्ण शान्ति ही मिलती है और न मन ही स्थिर होता है। वह मात्र बुद्धि बल द्वारा ज्ञान-लाभ कदापि नहीं कर सकता।

(५) **उचित आचरण**

जब तक मनुष्य सत्यवादी, त्यागी और अन्तर्मुखी बनकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये जीवन व्यतीत नहीं करता, तब तक उसे आत्मोपलब्धि संभव नहीं।

(६) **सारवस्तु ग्रहण करना**

दो प्रकार की वस्तुएँ हैं-नित्य और अनित्य। पहली आध्यात्मिक विषयों से संबंधित है तथा दूसरी सांसारिक विषयों से। मनुष्यों को इन दोनों का सामना करना पड़ता है। उसे विवेक द्वारा किसी एक का चुनाव करना पड़ता है। विद्वान् पुरुष अनित्य से नित्य को श्रेयस्कर मानते हैं, परन्तु जो मूढ़मति हैं, वे आसक्तियों के वशीभूत होकर अनित्य को ही श्रेष्ठ जानकर उस पर आचरण करते हैं।

(७) **मन और इन्द्रियों का निग्रह**

शरीर एक रथ है। आत्मा उसका स्वामी तथा बुद्धि सारथी है। मन लगाम है और इन्द्रियाँ उसके घोड़े। इन्द्रिय-नियंत्रण ही उसका पथ है। जो अल्प बुद्धि हैं और जिनके मन चंचल हैं तथा जिनकी इन्द्रियाँ सारथी के दुष्ट घोड़ों के समान हैं, वे अपने गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुँचते तथा जन्म-मृत्यु के चक्र में ही घूमते रहते हैं। परंतु जो विवेकशील हैं, जिन्होंने अपने मन पर नियंत्रण कर लिया है तथा जिनकी इन्द्रियाँ सारथी के उत्तम घोड़ों के समान नियंत्रण में हैं, वे ही गन्तव्य स्थान पर पहुँच पाते हैं, अर्थात् उन्हें परम पद की प्राप्ति हो जाती है और उनका पुनर्जन्म नहीं होता। जो व्यक्ति अपनी बुद्धि द्वारा मन को वश में कर लेता है, वह अन्त में अपना लक्ष्य प्राप्त कर, उस सर्वशक्तिमान् भगवान विष्णु के लोक में पहुँच जाता है।

(८) **मन की पवित्रता**

जब तक मनुष्य निष्काम कर्म नहीं करता, तब तक उसे चित्त की शुद्धि एवं आत्म-दर्शन संभव नहीं है। विशुद्ध मन में ही विवेक और वैराग्य उत्पन्न होते हैं, जिससे आत्म-दर्शन के पथ में प्रगति हो जाती है। अहंकारशून्य हुए बिना तृष्णा से छुटकारा पाना संभव नहीं है। विषय-वासना आत्मानुभूति के मार्ग में विशेष बाधक हैं। यह धारणा कि मैं शरीर हूँ, एक भ्रम है। यदि तुम्हें अपने जीवन के ध्येय (आत्मसाक्षात्कार) को प्राप्त करने की अभिलाषा है तो इस धारणा तथा आसक्ति का सर्वथा त्याग कर दो।

(९) गुरु की आवश्यकता

आत्मज्ञान इतना गूढ़ और रहस्यमय है कि मात्र निजप्रयत्न से उसकी प्राप्ति संभव नहीं। इस कारण आत्मानुभूति प्राप्त गुरु की सहायता परम आवश्यक है। अत्यन्त कठिन परिश्रम और कष्टों के उपरान्त भी दूसरे क्या दे सकते हैं, जो ऐसे गुरु की कृपा से सहज ही प्राप्त हो सकता है? जिसने स्वयं उस मार्ग का अनुसरण कर अनुभव कर लिया हो, वही अपने शिष्य को भी सरलतापूर्वक पग-पग पर आध्यात्मिक उन्नति करा सकता है।[१]

(१०) अन्त में ईश-कृपा परमावश्यक है।

जब भगवान किसी पर कृपा करते हैं तो वे उसे विवेक और वैराग्य देकर इस भवसागर से पार कर देते हैं। यह आत्मानुभूति न तो नाना प्रकार की विद्याओं और बुद्धि द्वारा हो सकती है और न शुष्क वेदाध्ययन द्वारा ही। इसके लिए जिस किसी को यह आत्मा वरण करती है, उसी को प्राप्त होती है तथा उसी के सम्मुख वह अपना स्वरूप प्रकट करती है - कठोपनिषद् में ऐसा ही वर्णन किया गया है।

बाबा का उपदेश

जब यह उपदेश समाप्त हो गया तो बाबा उन महाशय से बोले कि, ''अच्छा, महाशय! आपकी जेब में पाँच रुपये के पचास गुना रुपयों के रूप में ब्रह्म है, उसे कृपया बाहर निकालिये।'' उसने नोटों की गड्डी बाहर निकाली और गिनने पर सबको अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि वे दस-दस के पच्चीस नोट थे। बाबा की यह सर्वज्ञता देखकर वे महाशय द्रवित हो गए और बाबा के चरणों पर गिरकर आशीर्वाद की प्रार्थना करने लगे। तब बाबा बोले कि, ''अपना ब्रह्म का (नोटों का) यह बण्डल लपेट लो। जब तक तुम्हारा लोभ और ईर्ष्या से पूर्ण छुटकारा नहीं हो जाता, तब तक तुम ब्रह्म के सत्यस्वरूप को नहीं जान

---

१. तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ - गीता ४॥ ३४॥

सकते। जिसका मन, धन, सन्तान और ऐश्वर्य में लगा है, वह इन सब आसक्तियों को त्यागे बिना कैसे ब्रह्म को जानने की आशा कर सकता है? आसक्ति का भ्रम और धन की तृष्णा दु:ख का एक भँवर (विवर्त्त) है, जिसमें अहंकार और ईर्ष्यारूपी मगरों को वास है। जो इच्छारहित होगा, केवल वही यह भवसागर पार कर सकता है। तृष्णा और ब्रह्म के पारस्परिक संबंध इसी प्रकार के हैं। अत: वे परस्पर कट्टर शत्रु हैं।''

तुलसीदास जी कहते हैं :-

''जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूँ होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम॥''

''जहाँ लोभ है, वहाँ ब्रह्म के चिन्तन या ध्यान की गुंजाइश ही नहीं है। फिर लोभी पुरुष को विरक्ति और मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है? लालची पुरुष को न तो शान्ति है और न सन्तोष ही, और न वह दृढ़ निश्चयी ही होता है। यदि कण मात्र भी लोभ मन में शेष रह जाए तो समझना चाहिए कि सब साधनाएँ व्यर्थ हो गयीं। एक उत्तम साधक यदि फल प्राप्ति की इच्छा या अपने कर्त्तव्यों का प्रतिफल पाने की भावना से मुक्त नहीं है और यदि उनके प्रति उसमें अरुचि उत्पन्न न हो तो सब कुछ व्यर्थ ही हुआ। वह आत्मानुभूति प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकता। जो अहंकारी तथा सदैव विषय-चिंतन में रत हैं, उन पर गुरु के उपदेशों तथा शिक्षा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अत: मन की पवित्रता अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि उसके बिना आध्यात्मिक साधनाओं का कोई महत्त्व नहीं तथा वह निरा दम्भ ही है। इसलिये श्रेयस्कर यही है कि जिसे जो मार्ग बुद्धिगम्य हो, वह उसे ही अपनाए। मेरा खज़ाना पूर्ण है और मैं प्रत्येक की इच्छानुसार उसकी पूर्त्ति कर सकता हूँ; परन्तु मुझे पात्र की योग्यता-अयोग्यता का भी ध्यान रखना पड़ता है। जो कुछ मैं कह रहा हूँ, यदि तुम उसे एकाग्र होकर सुनोगे तो तुम्हें निश्चय ही लाभ होगा। इस मस्जिद में बैठकर मैं कभी असत्य भाषण नहीं करता। जब घर में किसी अतिथि को निमंत्रण दिया जाता है तो उसके साथ परिवार, अन्य मित्र और सम्बन्धी आदि भी भोजन करने के लिये आमंत्रित किये जाते हैं।'' बाबा द्वारा धनी महाशय को

दिये गए इस ज्ञान-भोज में मस्जिद में उपस्थित सभी जन सम्मिलित थे। बाबा का आशीर्वाद प्राप्त कर सभी लोग उन धनी महाशय के साथ हर्ष और संतोषपूर्वक अपने-अपने घरों को लौट गए।

बाबा का वैशिष्ट्य

ऐसे सन्त अनेक हैं, जो घर त्याग कर जंगल की गुफाओं या झोपड़ियों में एकान्त वास करते हुए अपनी मुक्ति या मोक्ष-प्राप्ति का प्रयत्न करते रहते हैं। वे दूसरों की किंचित् मात्र भी अपेक्षा न कर सदा ध्यानस्थ रहते हैं। श्री साईबाबा इस प्रकृति के न थे। यद्यपि उनके कोई घर द्वार, स्त्री और सन्तान, समीप या दूर के संबंधी न थे, फिर भी वे संसार में ही रहते थे। वे केवल चार-पाँच घरों से भिक्षा लेकर सदा नीमवृक्ष के नीचे निवास करते तथा समस्त सांसारिक व्यवहार करते रहते थे। इस विश्व में रहकर किस प्रकार आचरण करना चाहिए, इसकी भी वे शिक्षा देते थे। ऐसे साधु या सन्त प्रायः बिरले ही होते हैं, जो स्वयं भगवत प्राप्ति के पश्चात् लोगों के कल्याणार्थ प्रयत्न करें। श्री साईबाबा इन सब में अग्रणीय थे, इसलिये हेमाडपंत कहते हैं :-

''वह देश धन्य है, वह कुटुम्ब धन्य है तथा वे माता-पिता धन्य हैं, जहाँ साईबाबा के रूप में यह असाधारण परम श्रेष्ठ, अनमोल विशुद्ध रत्न उत्पन्न हुआ।''

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥